लौह पुरुष स्वामी स्वतंत्रानन्द का जीवन और दर्शन

(1877– 1955 पुण्यतिथि पर शत शत नमन)

स्वामी स्वतंत्रानन्द जी का जन्म पौष मास की पूर्णिमा सन 1877 ई. में लुधियाना से कुछ मील दूर मोही ग्राम के जाट सिख परिवार में हुआ। इनका नाम केहर सिंह था। इनके पिता सरदार भगवान सिंह सेना में अफसर थे तथा बाद में बडौदा रियासत की सेना के प्रमुख बने। पिता की इच्छा पुत्र को फ़ौज में अफसर बनाने की थी।
केहर सिंह बचपन में ही मातृविहीन हो गए थे। माता की मृत्यु के समय दूसरे छोटे भाई की आयु मात्र आठ दिन की थी। अत: आपका लालन पालन अपने ननिहाल लताला कस्बे में हुआ। वहां उदासी पंथ के डेरे के महंत पंडित बिशनदास के संपर्क से बालक केहरसिंह पर वैदिक धर्म की छाप पडी।

केवल 15 वर्ष की आयु में वैराग्य भावन से प्रेरित होकर एक दिन चुपचाप घर से निकल पड़े। वर्षों तक देश के विभिन्न भागों और मलाया, ब्रह्मा आदि देशों में भ्रमण करते रहे। भारत वापस लौटने पर आपने फिरोजपुर जिले के परवरनड़ नामक ग्राम में स्वामी पूर्णनन्द जी सरस्वती से 23 वर्ष की आयु में सन्यास की दीक्षा लेकर प्राणपुरी नाम पाया। सन्यासी बनाने के बाद लताला वाले महंत जी की प्रेरणा से आपने अमृतसर में जाकर उदासी संत पंडित स्वरुपदास जी से वेद, दर्शन एवं व्याकरण ग्रंथों का अध्ययन किया। साथ ही यूनानी और आयुर्वेदिक पद्धतियों का अध्ययन किया। आप यूनानी और आयुर्वेदिक पद्धतियों के असाधारण पंडित थे।
:
अमृतसर से आप कुरुक्षेत्र के मेले पर गए। इस समय आपने कौपीन के सिवाय सब वस्त्र त्याग दिए। केवल एक समय भिक्षा का भोजन ग्रहण करते तथा अधिक समय साधना में व्यतीत करते। यहाँ से स्वामी जी विरक्तों की एक टोली में मिलकर भारत भ्रमण पर निकल पड़े। भिक्षा के लिए आप तुम्बा के स्थान पर एक बाल्टी रखते थे जिसके कारण आपका नाम 'बाल्टी वाला बाबा' पड़ गया। आप अपने साथी साधुओं को निराले ढंग से वैदिक संस्कार दिया करते थे। स्वतंत्र विचार धारा रखने के कारण मंडली में आपको सभी स्वतंत्र स्वामी कहकर पुकारने लगे। धीरे-धीरे आपका नाम स्वतंत्रतानंद सरस्वती पड़ गया।

पंजाब वापस पहुँचाने पर पंडित बिशनदास जी की प्रेरणा से आर्यसमाज के माध्यम से देश सेवा और धर्म रक्षा की ठानी और आर्य समाज को अपना जीवन भेंट करने का संकल्प ले लिया। इस संकल्प के बाद आपने महर्षि दयानंदकृत ग्रंथों का और अन्य वैदिक साहित्य का गहन अध्ययन किया। आर्य समाज के प्रचार के लिए सर्वप्रथम आपने राममण्डी जिला भटिंडा को चुन। यहाँ रहकर प्रचार के साथ गहन स्वाध्याय भी किया। हिसार जिले के एक समीपवर्ती गाँव कुथरावां में एक हिंदी पाठशाला भी चालू की। आपका सर्वप्रथम भाषण आर्य समाज सिरसा जिला हिसार के वार्षिक उत्सव पर हुआ।

सन् 1920 और 1923 ई. में आप प्रथम वैदिक धर्मी सन्यासी थे जो बिना किसी संस्था की सहायता से जावा, सुमात्रा, मलाया, सिंगापूर, फिलिपिन्स, ब्रहमा,मोरिशस व अफ्रीका आदि देशों में प्रचारार्थ गए। तब तक सार्वदेशिक सभा की स्थापना नहीं हुई थी। विदेश प्रचार यात्रा से लौटकर लताला के पास स्थित एक डेरे में लगातार एक वर्ष तक योगसाधना के द्वारा अनेक सिद्धियाँ प्राप्त की। आप बहुत बड़े साधक तथा महान योगी थे। सन् 1948 में आप फिर से प्रचारार्थ विदेश गए। आपने मोरिशस में भी तीन वर्ष प्रचार किया।

महर्षि की जन्म शताब्दी व दयानंद उपदेशक विद्यालय – सन 1925 में मथुरा में महर्षि की जन्म शताब्दी बड़े धूम धाम से मनाई गयी। आपने वहाँ आर्यों को प्रेरणाप्रद सन्देश दिया। इस शताब्दी के स्मारक के रूप में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा लाहोर में दयानंद उपदेशक विद्यालय स्थापित किया। सभा कि प्रार्थना पर आपने दस वर्ष तक इस विद्यालय के आचार्य के रूप में काम किया। इस अवधी में आपने आर्य समाज को अनेक प्रतिभाशाली विद्वान लेखक गवेषक प्रदान किये। स्वामीजी ने आर्य समाज को बीसियों कर्मठ साधू-महात्मा दिए। स्वामी सर्वानंद जी दीनानगर और स्वामी ओमानंद जी गुरुकुल झज्जर आपके ही शिष्य थे।

मठों की स्थापना

आपके व्यापक अनुभव के आधार पर आपका यह विचार बना कि विरक्त साधु-महात्मा ही धर्म प्रचार का कार्य सुन्दर रीती से कर सकते हैं। साधुओं के निर्माण के लिए तथा वृद्धवस्ता एवं रुग्णावस्था में उनके विराम व सेवा के लिए दयानद मठ की स्थापना का विचार मन में आया। आप तत्काल लाहोर छोड़कर चल पड़े। अमृतसर में मठ स्थापना में बढ़ा आ गयी तो सर्वप्रथम सन 1937 में दीना नगर में प्रथम दयानंद मठ की स्थापना की। उसके बाद सन 1947-48 में रोहतक में दूसरे मठ की स्थापना की। आज दोनों ही सुविख्यात एवं प्रगतिशील संस्थाएं हैं।

राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में

निजाम हैदराबाद सत्याग्रह के सूत्रधार – दीना नगर मठ का कार्य सुचारु रूप से चला भी नहीं था कि आर्य समाजियों ने 1938-39 में अपने धार्मिक और सांस्कृतिक अधिकारों की रक्षा के लिए निजाम हैदराबाद से टक्कर लेने का निश्चय किया। स्वामी जी इस सत्याग्रह के सूत्रधार थे। नारायण स्वामी जी के नेतृत्व में सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ। हजारों की संख्या में आर्य समाजियों ने जेल की कठोर यातनाएं सहन की। अनेक ने अपना पूर्ण बलिदान देकर संसार को चकित कर दिया। आर्य समाज की अपूर्ण विजय हुई। निजाम हैदराबाद को झुकना पड़ा। इस विजय का बहुत बड़ा श्रेय स्वामी स्वतंत्रतानंद जी को जाता है। यह सत्याग्रह स्वतंत्रता संग्राम का ही एक हिस्सा था। सरदार पटेल ने कहा था कि, “यदि आर्य समाज 1938-39 निजाम हैदराबाद में सत्याग्रह नहीं करता तो हैदराबाद सवतंत्र भारत का अंग कदापि न बन पाता”। आज इस सत्याग्रह के जीवित सेनानियों को स्वाधीनता सेनानी पेंसन मिलती है।

तत्कालीन पंजाब और वर्त्तमान हरयाणा में एक छोटी सी लोहारू नाम की रियासत थी। इसका नवाब अमीनुद्दीन अहमद खान भी निजाम हैदराबाद नवाब उस्मान अली खान की तरह क्रूर एवं मतान्ध था। उसकी आँख में भी आर्य समाज खटकता था। उसके राज्य में वैदिक धर्म, शिक्षा एवं स्वाधीनता के प्रचार की सख्त मनाही थी। अनेक प्रकार के करों से प्रजा परेशान थी। प्रतिवर्ष पांच-सात हिंदुओं को विधर्मी

बना लिया जाता था। एक अप्रेल 1940 को लोहारू कस्बे में आर्य समाज की स्थापना की। इसका प्रथम वार्षिक उत्सव 29-30 मार्च 1941 को रखा गया। आर्य समाज मंदिर की आधारशिला भी इसी अवसर पर रखने का निश्चय किया। इस अवसर पर स्वामी स्वतंत्रतानंद जी को विशेष रूप से आमंत्रित किया गया था। 29 मार्च की सायंकाल नगर कीर्तन के अवसर पर नवाब के पुलिस के कारिंदों ने जुलुस पर पीछे से हमला कर दिया। भक्त फूलसिंह व चौधरी नौनंदसिंह जी स्वामी को बचाते हुए आप लहुलुहान हो मूर्छित होकर गिर पड़े। साथ अन्य लोगों को गम्भीर चोटें आई। स्वामीजी के उस समय के रक्त-रंजीत वस्त्र आज भी स्वामी ओमानंद जी गुरुकुल झज्जर के संग्रहालय में सुरक्षित हैं। 64 वर्ष कि आयु में इतनी चोट खाकर भी बचना एक चमत्कार है।

बाद में सन 1945 में अपने शिष्य स्वामी ईशानंद जी को प्रेरित कर यहाँ आर्य समाज मंदिर बनवाया। स्वामी जी पुनः फ़रवरी 1947 में समाज के उत्सव पर पधारे। नवाब ने शहर में कर्फ्यू लगा दिया। उत्सव स्थगित कर दिया गया। मार्च 1948 में स्वामी जी पुनः समाज के उत्सव पर पधारे। उत्सव पर 28 मार्च को लोहारू में विशाल शोभायात्रा निकली गयी। 29 मार्च को आर्य समाज मंदिर में नवाब ने स्वामी से अपने पूर्व कुकृत्यों के लिए क्षमा याचना की, पश्चाताप प्रकट किया तथा समाज मंदिर के लिए कुछ धन राशि भी भेंट की। स्वामी जी ने उर्दू का सत्यार्थ प्रकाश पुस्तक नवाब साहिब को भेंट की।

स्वामी जी कांग्रेसी विचार धारा के नहीं थे परन्तु विदेशी शासन से भारत माता को बंधनमुक्त करने के लिए राष्ट्रीयता स्वाधीनता संग्राम में सक्रीय भाग लिया। 1930 के सत्याग्रह में कांग्रेस के सर्वाधिकारी रहे। पंजाब गवर्नर की हत्या के षडचंत्र का आरोप लगाकर लाहौर में आपको बंदी बना लिया गया। आपकी कलाई मोटी होने के कारण पुलिस दो हथकड़ियां लगाकर आपको कोतवाली ले गयी। ध्यान रहे इस बाल ब्रह्मचारी का वजन तीन मन से अधिक था। कद 6 फूट 1 इंच था। पाँव के जूते का नाप भी एक फूट था। 1930 में वे कई दिन बंदी रहे। भारत छोडो आंदोलन में आपको सेना में विद्रोह फ़ैलाने का झूठा आरोप लगाकर वायसराय के आदेश से बंदी बनाकर लाहौर किले की काल कोठरी में डाकू लोगों के साथ बंद किया गया। बिना बिस्तर के ही इस साधु ने कई महीने इस किले के तहखाने में बिताये। लाहौर दुर्ग से आपको 6 जनवरी 1944 को छोड़ा गया। लेकिन पुनः दीनानगर मठ में नजरबन्द कर दिया गया।

सन् 1953 ई. में हैदराबाद में आयोजित अष्टम आर्य महासम्मेलन में गोहत्या बंद कराने के लिए कोई ठोस कदम उठाने का निर्णय लिया। इस कार्य के लिए 76 वर्षीय स्वामी जी ही आगे आये। आपने पूरे देश का भ्रमण किया। केंद्र और राज्य सरकारों से पत्र-व्यवहार किया। रातदिन की कठोर मेहनत और समय पर भोजन करने के अभाव में आप जिगर केंसर से पीड़ित हो गए। बहुत समय तक डाक्टर इसे पीलिया समझते रहे। चिकित्सा के लिए आपको मुम्बई ले जाया गया। वहाँ सेठ प्रतापसिंह सूरजी ने चिकित्सा पर हजारों रुपये व्यय किये। परन्तु हालत सुधरी नहीं। 3 अप्रेल सन् 1955 को प्रातः 6 बजे ईश्वर का ध्यान लगाकर देह छोड़ दी। आपने साधुरूप में 55 वर्ष तक समाज की सेवा की।

लेखक :- श्री सुखवीर दलाल (जाट ज्योति)
प्रस्तुति :- अमित सिवाहा
स्वामी स्वतंत्रतानन्द की जीवनी 500₹
प्राप्ति के लिए 7015591564 पर व्हाट्सप्प द्वारा सम्पर्क करें।